जैनधर्म विश्वधर्म बन सकता है

—(स्व०) काका कालेलकर

(मूर्धन्य गांधीवादी विचारक, चिन्तक तथा प्रसिद्ध लेखक)

जैनधर्म का, और भगवान महावीर का, मैं भक्त हूँ (विद्वान नहीं)। जैन-समाज का प्रेमी हूँ। जैनसमाज के पुरुषार्थ के प्रति मेरे मन में आदर है किन्तु एक सनातनी ब्राह्मण अपने को जैनी कैसे कहला सकता है ? तो भी, जैन-समाज के कई अच्छे-अच्छे सेवक मेरे प्रति प्रेम और आत्मीयता रखते हैं और मेरे विचार सुनने के लिए उत्सुकता बताते हैं। इसीलिये मैंने चार शब्द बोलने का स्वीकार किया है। जो बातें आपको अच्छी लगें अपनाइये। आप लोगों में क्षमावृत्ति है। मतभेद सहन करने की आपको आदत है, इसलिये, चार शब्द बोलने की हिम्मत करूँगा।

इस अपने बहुभाषी, बहुवंशी और बहुधर्मी देश में जैनियों के अनेकान्तवाद का स्वीकार और आचार सबको करना ही पड़ता है। इस देश में धर्म-समाजों के झगड़े कभी नहीं हुए सो नहीं, लेकिन कुल मिलाकर हमारा राष्ट्र सहजीवन जीने को और मतभेद सहन करने को काफी सीखा है।

आज मुझे यही बात आपके सामने और आपके द्वारा भारत के सामने रखनी है कि; स्याद्वाद की दार्शनिक दृष्टि मान्य करके, अनेकान्तवाद के उदार हृदय की प्रेरणा से प्रेरित होकर ही, भारत के सामने अब अपने को और सारे विश्व को सर्व-समन्वय-वृत्ति सिखाने के दिन आ गये हैं।

इस देश में अधिकांश लोकसंख्या सनातनी वृत्ति वाले हिन्दुओं की है। उन्हीं का प्रतिनिधि होने से, मैं अपने समाज की गलतियों को अच्छी तरह से समझ सका हूँ, और उन गलतियों का स्वीकार करने में संकोच नहीं करूँगा। मुझे डर है कि हमारी चन्द गलतियाँ जैन समाज में भी पायी जा सकती हैं। उन्हें पहचान कर उनसे मुक्त होने के लिये आपको भी अन्तर्मुख बनना पड़ेगा और सबके साथ युगानुकूल सुधार करने के लिये तैयार रहना पड़ेगा।

हमारा समाज, हजारों बरसों से छोटी-छोटी जातियों में बँटा हुआ है और जातियों का मुख्य लक्षण है रोटी-बेटी व्यवहार की संकुचितता। इस प्रधान दोष के कारण इतना बड़ा समाज हजारों वर्ष गुलाम रहा, और महा मुश्किल से स्वतन्त्र होने के बाद भी यह संकुचितता हम छोड़ नहीं सके हैं। ऐसी संकुचितता न होने के कारण ही इस्लाम और ईसाई धर्म हमारे देश में फैल गये। हमारे यहाँ का बौद्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म, विश्वधर्म बनने की महत्त्वाकांक्षा धारण करके, श्रीलंका, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन, जापान आदि अनेक देशों में फैल गया।

हमारे देश में बौद्ध और जैन दोनों धर्म विश्वधर्म बनने की योग्यता रखते हैं। इनमें भी जैन-धर्म की अपनी अहिंसा और समन्वयवृत्ति के कारण यह धर्म विश्वधर्म बनने की अधिक से अधिक योग्यता रखता है। लेकिन शायद भारत के वातावरण के कारण जैन समाज एक संकुचित जाति बन गया है। शायद रोटी-बेटी व्यवहार के बंधन के कारण यह संकुचितता आयी हो।

मेरे इस निरीक्षण का और टीका का मुझे स्पष्टीकरण करना जरूरी है। दूसरों का हम पर बुरा असर होगा, इस डर को हद से अधिक महत्त्व देकर, आपने अपने साधुओं के लिये भारत के बाहर न जाने का सख्त नियम बनाया था।

साधु लोगों का मुख्य कार्य धर्म का उत्तम पालन करना और उसका प्रचार करना, यही हो सकता है। तब वे भारत से बाहर जाकर प्रचार क्यों न करें? वहीं तो प्रचार की अधिक जरूरत है।

अपने बचपन में जब मैंने सुना कि जैन साधु भारत से बाहर जा नहीं सकते, अगर गये तो वे भ्रष्ट माने जाते हैं तब मेरे जैसे लोग पूछने लगे---क्या जैनियों का अहिंसा धर्म केवल भारत के ही लिये है? भारत के बाहर का मांसाहार और हिंसा जैनियों को मान्य है? विश्वधर्म बनने के लिये बना हुआ धर्म, ऐसा लाचार कैसे बना?

भगवान महावीर ने अहिंसा के साथ स्याद्वाद याने अनेकान्तवाद का जोरों से प्रचार किया। अहिंसा का वह अत्यन्त योग्य और सार्वभौम होने लायक रूप है।

जैनधर्म : एक सार्वभौम जीवनदृष्टि

अनेकान्तवाद पर आपके सामने व्याख्यान देने यहाँ नहीं आया हूँ। मुझे खास इतना ही कहना है कि सारी दुनिया में धर्म-धर्म के बीच जो ईर्ष्या, असूया और विरोध पाये जाते हैं उनकी जगह मानव-जाति के सब वंशों में, सब धर्मों में और संस्कृतियों में (ईर्ष्या, मत्सर और झगड़ा टालकर उनके बीच) समन्वय लाने का, आदान-प्रदान और निष्काम सेवा को स्थापन करने का, भारतमाता के मिशन का समर्थन महावीर स्वामी के अनेकान्तवाद में ही मैं देखता हूँ।

भारतमाता और समस्त मानव जाति भविष्य के लिए महावीर के उपदेशों द्वारा ही प्रतिस्पर्धा टालकर, कौटुम्बिक भाव और पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगी।

मैं यही कहने आया हूँ कि विश्व-समन्वय के द्वारा युद्धों को टालकर, धर्मों-धर्मों के बीच, गोरे-काले आदि वंशों के बीच जो प्रतिस्पर्धा अथवा होड़ चलती है, उसे टालकर विश्व-समन्वय याने कौटुम्बिक भाव स्थापित करने के लिए ही विश्वव्यापी बनने के लायक जैनधर्म है।

ईसाई और इस्लामी धर्म-प्रचार से हम बोध लेंगे, लेकिन उनका पूरा अनुकरण नहीं करेंगे। उनके मिशन प्रतिस्पर्धा को मानते हैं और हम तो प्रतिस्पर्धा को हिंसारूप पाप समझते हैं। हमें तो दुनिया के सब राष्ट्रों में, वंशों में, संस्कृतियों में और धर्मों में अनेकांतवादी विश्व समन्वय-मूलक कौटुम्बिक भाव को फैलाना है।[1]

१. धर्मक्रांति परिषद् दिल्ली में १५ सितम्बर १९७४ को प्रदत्त भाषण से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org